THE ECONOMIC TIMES

Date:09-04-24

Decoupling the Great Indian False Binary

ET Editorials

The Supreme Court's expert committee to determine the Great Indian Bustard's core habitat will help move towards resolving adifficult situation of balancing conserva tion with evacuating renewable electricity. Irrespective of the precedent it sets, the era of managing multiple goods and non-negotiables is upon us.

Such instances will rise as India decarbonises and climateproofs its economy. Electricity networks will grow exponentially even if India adopts every energy efficiency option. Robust transmission-distribution network and digital infrastructure will mean more wir es and cables — overhead and undergr ound. G iven population density, rich biodiversity resources and hotspots, cultural sanctity, livelihoods of forest residents, conserva tion of forests and health of hydrological systems, choosing between competing non-negotia bles will be the norm. Hierar chy of norms that prioritised economic growth over other considerations no longer holds in a climate-constrained world. We need a different appr oach, which includes pushing back on the dogma of speciesism, or caring about humans at the cost of other living beings.

Clear targets, plans, consultations, and exploring trade-offs and options must underpin the road to a net-zero emissions economy by 2070. The 2030 target of 500 GW of non-fossil electricity-generation capacity and sourcing 50% electricity consumption from RE by 2030 must be translated into drawing board plans considering all factors, including addressing nonnegotiables. A plan that details out every possible issue and contingency can factor in all workarounds and options. One good won't need to be sacrificed at the altar of another.

THE HINDU

Date:09-04-24

Perverse intent

On the Citizenship (Amendment) Act The CAA suffers from a narrow definition of persecution and arbitrariness.

Editorial

Offering citizenship to migrants who have fled their countries of origin because of persecution and have stayed a sufficient time in their adopted country, is a humane endeavour by any nation-state and should be generally welcomed. But by limiting this measure only to migrants from an arbitrary group of neighbouring nations and to narrow the definition only to "religious persecution", and to further constrict this to not include Muslims, atheists, and agnostics among others, would suggest that the reasoning to provide this citizenship has less to do with humanitarianism and more to do with a warped and perverse understanding of Indian citizenship. By its very intent, the Citizenship (Amendment) Act, whose rules were notified by the Ministry of Home Affairs last month, over four years since the Act was passed in Parliament, goes against the ethos of the Indian Constitution. It is a short-sighted piece of legislation in its understanding that only religious persecution merits a reason for providing asylum and citizenship. It is fairly evident that persecution can be due to other reasons as well, such as linguistic discrimination in the case of Sri Lanka in recent years, and erstwhile East Pakistan from which Bangladesh was born. Besides, as the case of the Rohingya from Myanmar shows, Muslims have also faced the severest form of discrimination in recent years, with thousands killed, more than a million of them rendered stateless and lakhs fleeing to other countries including India due to deliberate genocidal policies implemented by the ruling regime in the country. Even in Muslim-majority countries and those professing Islam as the state religion, such as Pakistan, minority Islamic sects such as the Ahmadiyyas have been subject to oppression and persecution.

The argument by petitioners against the CAA in the Supreme Court of India that the rules of the Act do not require foreign applicants to effectively renounce citizenship of their native countries, and that this allows for the possibility of dual citizenship which is directly violative of the Citizenship Act is also fair even if it is only a procedural one. While India is not party to the 1951 UN Convention Relating to the Status of Refugees and the 1967 Protocol Relating to the Status of Refugees, they have provisions that require signatories to provide refugee status to those who are subjects of different forms of persecution beyond just due to their religion. Signatories must also apply these provisions "without discrimination as to race, religion or country of origin" and it is clear that the CAA would run afoul of them if India were a signatory. The Court must declare the CAA as unconstitutional and revoke its implementation because of its arbitrary and selective norms for providing citizenship to migrants.

दैनिक भास्कर

Date:09-04-24

पर्यावरण संरक्षण के लिए लोग भी संजीदगी दिखाएं

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के खिलाफ अधिकार को मौलिक अधिकारों में वर्णित समानता और जीने के अधिकार (अनुच्छेद 14 और 21) में शामिल मानने का फैसला देकर सरकार को इसके लिए हर संभव प्रयास करने के लिए कहा है। कोर्ट ने कहा है कि संकट देखते हुए देश को तत्काल 'एनर्जी मिक्स' में सौर ऊर्जा की ओर तेजी से

बढ़ना होगा। इसके पहले इसी कोर्ट ने जीने के अधिकार में, सम्मान से जीने के अधिकार को शामिल किया था, लेकिन पहली बार इस कोर्ट ने ऐसे संकट पर अपना फैसला दिया है। यानी कोर्ट ने राज्य के नीति निर्देशक तत्व के रूप में वर्णित पर्यावरण संरक्षण (जिसमें जंगलों और जीव-जंतुओं की रक्षा भी शामिल है) को नागरिकों के मौलिक अधिकार का अंग माना है। लेकिन कोर्ट को यह नहीं भूलना होगा कि जिम्मेदारी सिर्फ राज्य की नहीं नागरिकों की भी है। नागरिकों को भी ऐसी चेतना को बाध्यकारी बनाना होगा। मोटर चलाकर पानी से कार धोने व लॉन सींचने वाले, बेवजह दफ्तरों-बंगलों में एसी चलाने वाले, पानी जैसे खत्म होते वाले स्रोत को अवैज्ञानिक तरीके से खेतों में बहाने वाले, बड़ी गाड़ियों के काफिले में चलने वाले भी यह समझें कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण उनका संवैधानिक कर्तव्य है। दुनिया में बिजली खपत में 10% और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में 4% योगदान वातानुकूलन का रहता है। क्या अपने बच्चों के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए संपन्न वर्ग इस बात की शपथ लेगा कि वह यथासंभव विलासिता के जीवन से बचकर ऊर्जा खपत को कम करेगा ? एसी के इस्तेमाल से कई प्रदूषक वातावरण में फैलते हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेश को देखते हुए सरकार को प्रदूषण पैदा करने वाले ऐसे कारक, जो विलासिता के कारण और गैर-जिम्मेदाराना होते हैं, उन पर कार्बन टैक्स लगाना शुरू करना चाहिए।

दैनिक जागरण

Date:09-04-24

समस्याओं से घिरते बुजुर्ग

संपादकीय

नीति आयोग के एक आकलन के अनुसार वर्ष 2050 तक 60 से अधिक आयु वाली आबादी आज के मुकाबले करीब नौ प्रतिशत बढ़कर 19 प्रतिशत हो जाएगी। सबसे अधिक आबादी वाले देश में यह जनसंख्या अच्छी-खासी होगी। चूंकि भारत में सामाजिक सुरक्षा की कोई ठोस योजनाएं नहीं हैं, इसलिए बुजुर्गों की समस्याएं बढ़ रही हैं। बहुत कम वरिष्ठ नागरिक ऐसे हैं, जिन्हें गुजारे लायक पेंशन मिलती है। यह पेंशन भी सरकारी सेवाएं देने वाले बुजुर्गों को मिलती है। निजी क्षेत्र में काम करने वाले बुजुर्गों को पेंशन या तो मिलती नहीं या फिर वह इतनी कम होती है, उसका कोई मतलब नहीं। वास्तव में वह ऊंट के मुंह में जीरा बराबर भी नहीं होती। इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि राज्य सरकारें कमजोर आर्थिक स्थिति वाले बुजुर्गों को प्रति माह कुछ पैसा देती हैं, क्योंकि वह बहुत ही कम है। अपने देश में एकल परिवारों की बढ़ती संख्या के चलते अब बुजुर्गों की पहले जैसी देखभाल नहीं हो पाती। बुजुर्ग केवल एकाकीपन का ही सामना नहीं करते, बल्कि आर्थिक तंगी से भी जूझते हैं। कम से कम वे तो अवश्य ही जूझते हैं, जिन्होंने असंगठित क्षेत्र में काम किया होता है। बुढ़ापे में उनके पास आय का कोई जरिया नहीं होता।

वरिष्ठ नागरिकों को स्वास्थ्यगत समस्याओं से भी कहीं अधिक दो-चार होना पड़ता है, लेकिन अधिकांश के पास स्वास्थ्य बीमा नहीं होता या यह कहें कि उनके पास स्वास्थ्य बीमा लेने की सामर्थ्य ही नहीं होती। ऐसे में यह समय की मांग है कि प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना के दायरे में पूरी बुजुर्ग आबादी को शामिल किया जाए। जो बुजुर्ग अपनी बचत से

होने वाली आय पर निर्भर हैं, ब्याज दरों में उतार-चढ़ाव के चलते उनकी आय प्रभावित होती है और कभी-कभी तो वह उनके जीवन-यापन के लिए अपर्याप्त हो जाती है। नीति आयोग ने बुजुर्गों की जमा रकम पर ब्याज दर की तर्कसंगत सीमा तय करने और रिवर्स मार्गेज के नियमों में बदलाव करने के साथ सीनियर केयर होम्स बढ़ाने के जो सुझाव दिए, उन पर प्राथमिकता के आधार पर ध्यान देना चाहिए। यह ठीक नहीं कि नीति आयोग ने यह पाया कि हाउसिंग सोसायटियां वरिष्ठ नागरिकों को ध्यान में रखकर नहीं बनाई जातीं। अपने देश में जिस अनुपात में वरिष्ठ नागरिकों की आबादी बढ़ रही है, उस अनुपात में वृद्धावस्था आश्रम और सीनियर सिटिजन केयर होम्स नहीं बन रहे हैं। बुजुर्गों की चिंता सरकारों के साथ समाज को भी करनी होगी, क्योंकि नीति आयोग के अनुसार 19 प्रतिशत बुजुर्ग या तो तलाकशुदा हैं या फिर उनके घर वालों ने उन्हें अलग कर दिया है।

Date:09-04-24

राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग का सवाल

अश्विनी कुमार, (लेखक वरिष्ठ अधिवक्ता एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री हैं)

देश में आम चुनावों की प्रक्रिया के दौरान भ्रष्टाचार के आरोप में प्रमुख विपक्षी नेताओं की गिरफ्तारियां भारत के लोकतंत्र को किसी भी प्रकार से गौरवान्वित करने वाली या उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली नहीं हैं। इन गिरफ्तारियों को लेकर यही आरोप लग रहा है कि सरकारी एजेंसियों द्वारा सत्ता विरोधियों पर राजनीतिक दबाव बनाया जा रहा है। जांच एजेंसियों का रवैया भी पक्षपाती दिखता है। ऐसे समय में संवैधानिक संस्थान उदासीन बने हुए हैं। इतिहास पर दृष्टि डालें तो असीमित राजनीतिक और प्रशासनिक शक्ति का दुरुपयोग एक ऐसी सच्चाई है, जिसे हम देश में पहले भी देख चुके है, भले ही सरकारें चाहे किसी भी दल की रही हों। इन चिंताओं के बीच यह प्रश्न उठता है कि क्या चुनाव के वक्त नेताओं के खिलाफ एजेंसियों की कार्रवाई पर रोक लगनी चाहिए? अगर रोक लगनी चाहिए तो उसकी अवधि क्या होनी चाहिए और क्या चुनाव के बीच नेता और आम जनता के बीच भेदभाव रखा जा सकता है? जवाब आएगा-नहीं। हालांकि इसका रास्ता ढूंढ़ना ही होगा कि लोकतंत्र की गरिमा को लेकर समाज में कोई संशय पैदा न हो।

राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग से जुड़े सवाल केवल केंद्र सरकार के संदर्भ में ही नहीं उठ रहे हैं, बल्कि कई राज्य सरकारें भी सवालों के घेरे में हैं। यह कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार के आरोपों के संदर्भ में तभी किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जाना चाहिए जब जांच पूरी हो जाए और अदालतें अपना फैसला सुना दें। इस लिहाज से वर्तमान में केंद्रीय एजेंसियां जो कार्रवाई कर रही हैं, उस पर कोई राय व्यक्त करने से पहले जांच पूरी होने का इंतजार किया जाना चाहिए। इसकी भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि पहले जब विपक्षी दलों की ओर से प्रशासनिक तंत्र के दुरुपयोग के आरोप लगते थे, तब वे इतने तीखे होते नहीं थे।

इस समय ईडी और उसके दायरे में आने वाले पीएमएलए जैसे कानून की बहुत चर्चा है। पीएमएलए के संदर्भ में सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि यह एक कठोर कानून है और इसका इस्तेमाल सोच-विचार कर किया जाना चाहिए। समस्या यह है कि इस कठोर कानून के तहत बिना आरोप सिद्ध हुए आरोपितों को लंबे समय तक जेल में रखे जाने के मामले सामने आ रहे हैं। यह लोकतंत्र और संविधानप्रदत्त स्वतंत्रता के सिद्धांत के अनुकूल नहीं है। यह सही है कि कानून की

नजर में सभी समान हैं और राजनेताओं से उच्च आदर्शों की अपेक्षा की जाती है। इस अपेक्षा को पूरा करने के लिए राजनीतिक वर्ग को इसका ध्यान रखना चाहिए कि देश में ऐसी कोई धारणा नहीं बननी चाहिए कि प्रमुख विपक्षी नेताओं पर जो आरोप लगाए गए हैं, वे राजनीति से प्रेरित हैं। वैसे भी इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अपने देश में न्यायिक प्रक्रिया अत्यंत लंबी और बेहद थका देने वाली होती है। इसके चलते किसी के लिए भी खुद को दोषमुक्त साबित कर पाना आसान नहीं होता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध वकील एफली बेली ने अपनी किताब 'द डिफेंस नेवर रेस्ट्स' में लिखा है कि कानूनी प्रक्रिया की चक्की में जब पिसाई होती है तो अभियुक्त की बेगुनाही अप्रासंगिक हो जाती है। इस सच्चाई को सुप्रीम कोर्ट ने भी अपने एक निर्णय गंगाबाई बनाम संभाजी (2008) में दोहराते हुए कानूनी प्रक्रिया की भंवर के प्रति सचेत किया है। देश यह अपेक्षा करता है कि पीएमएलए जैसे कठोर कानून के प्रविधानों का पालन संविधान के अनुच्छेद-21 (जो प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता और सम्मान के अधिकार को मान्यता देता है) की मर्यादाओं के भीतर होना चाहिए। यह इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि नेताओं के खिलाफ प्रत्येक मुकदमा कुल मिलाकर मीडिया ट्रायल का रूप ले लेता है और इसी के अनुरूप लोग अपनी धारणा बनाने लगते हैं।

राजनीतिक नैतिकता, संवैधानिक मर्यादा, संवेदनशील न्यायिक प्रक्रिया का राष्ट्रीय गरिमा के साथ अभिन्न संबंध है। इसका तकाजा है कि प्रत्येक व्यक्ति को कानून के मुताबिक सहज न्याय मिले। यही एक आदर्श लोकतंत्र की पहचान भी है। राजनीतिक दलों को यह समझना और स्वीकार करना होगा कि विरोधियों के प्रति अनुचित भाषा और रवैया कभी न मिटने वाली व्यक्तिगत शत्रुता को जन्म देते हैं। इस समय देश में जिस प्रकार का राजनीतिक माहौल बना हुआ है, उसके लिए किसी एक दल अथवा व्यक्ति को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। कुछ नेता आज खुद पीड़ित महसूस कर रहे हैं, लेकिन सच्चाई यही है कि उन्होंने भी अतीत में राजनीतिक मर्यादाओं का पालन नहीं किया। वे शायद अतीत की गलतियों की ही सजा भुगत रहे हैं। यह सभी राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी है कि राजनीतिक प्रतिस्पर्धा देश में तनाव और बिखराव का कारण न बने।

जहां तक राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रश्न है तो इसका स्थायी समाधान व्यापक चुनाव सुधारों में ही निहित है। इन सुधारों के जरिये ही चुनाव प्रक्रिया में धनबल-बाहुबल के बढ़ते दुरुपयोग को रोका जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के हाल में आए चुनावी बांड वाले फैसले की आम तौर पर सराहना जरूर हुई है, मगर इसका एक परिणाम यह भी होगा कि चुनावों में फिर से काले धन का बोलबाला हो सकता है। इससे निपटने के लिए तात्कालिक कदम उठाए जाने की जरूरत है। इसके लिए राजनीतिक दलों को जल्द से जल्द किन्हीं कदमों पर आम राय बनानी होगी। बेहतर हो कि राजनीतिक दल इस मामले में दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य करें। राजनीतिक प्रतिशोध वास्तव में मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक आदर्शों के लिए घातक है। जिस देश का आत्मा मानवीय सम्मान, संवाद, सौहार्द और स्वतंत्र विचारों द्वारा परिभाषित एवं प्रेरित हो, वहां किसी भी व्यक्ति के सम्मान और स्वतंत्रता पर प्रहार असहनीय होगा। हम इतिहास के इस सबक को भुला नहीं सकते कि जंजीरों के हटने और जख्मों के मिटने के बाद भी उनके निशान रह जाते हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date:09-04-24

डंपिंग यार्ड बनते समुद्र तल

मनीष कुमार चौधरी

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक गहराई की अधिक विस्तृत वैज्ञानिक समझ ने आकार लेना शुरू नहीं किया था । जैसे-जैसे यूरोपीय और अमेरिकियों की वाणिज्यिक और क्षेत्रीय आकांक्षाएं दुनिया भर में विस्तारित हुईं, महासागर के बारे में अधिक सटीक और अधिक विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता भी बढ़ी, लेकिन जल्द ही विकास की अंधाधुंध दौड़ में समुद्र की इन गहराइयों का बेजा इस्तेमाल शुरू हो गया। समुद्र की गहराई का उपयोग बड़ी मात्रा में परमाणु सामग्री के लिए अंतिम विश्राम स्थल के रूप में भी किया गया।

पहले और दूसरे विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में ब्रिटिश, अमेरिकी, सोवियत, ऑस्ट्रेलियाई और कनाडाई सरकारों ने सैकड़ों-हजारों टन अप्रचलित रासायनिक हथियारों को दुनिया भर के पानी की गहराई में या तो ड्रमों में या टुकड़ों में भेज दिया। हालांकि सार्वजनिक आक्रोश के कारण इस प्रथा को 1972 में समाप्त कर दिया गया था। वर्ष 2019 के एक अध्ययन में आर्कटिक महासागर के तल पर कम से कम 18 हजार रेडियोधर्मी वस्तुएं बिखरी हुई पाई गईं, उनमें से कई को सोवियत संघ द्वारा वहां फेंक दिया गया था। जब ये वस्तुएं अपनी जहरीली विरासत को पानी में छोड़ना शुरू कर देंगी, तब क्या होगा? कई पर्यावरणविदों ने इस स्थिति को 'समुद्र तल पर धीमी गति से चल रहा चेर्नोबिल' कहा है। हालांकि सोवियत संघ ने किसी भी अन्य देश की तुलना में समुद्र तल पर अधिक परमाणु कचरा फेंका था, लेकिन वह निश्चित रूप से अकेला नहीं था । 1948 और 1982 के बीच, ब्रिटिश सरकार ने लगभग 70 हजार टन परमाणु कचरा समुद्र की गहराई में भेज दिया। भले ही कम मात्रा में ही सही, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, जापान और नीदरलैंड ऐसे कुछ देश हैं, जिन्होंने रेडियोधर्मी सामग्री के निपटान के लिए समुद्र का उपयोग किया है। 2019 में चीनी वैज्ञानिकों ने मारियाना ट्रेंच के तल पर रहने वाले उभयचरों के शरीर में 1940 और 50 के दशक में परमाणु बमों के विस्फोट से उपजे रेडियोधर्मी कार्बन - 14 की खोज की। अब जबकि अंतरराष्ट्रीय संधियां समुद्र में रेडियोधर्मी सामग्री के डंपिंग पर रोक लगाती हैं, ब्रिटिश सरकार कुम्ब्रिया के समुद्र तल के नीचे 100 टन से अधिक प्लूटोनियम सहित 750,000 क्यूबिक मीटर परमाणु कचरे के निपटान की योजना तलाश रही है। 1946 से 1993 तक, तेरह देशों ने मुख्य रूप से चिकित्सा, अनुसंधान और परमाणु उद्योग से निकले लगभग 200,000 टन परमाणु/रेडियोधर्मी कचरे को निपटाने के लिए समुद्रों का किसी डंपिंग यार्ड की तरह उपयोग किया। भले ही समुद्र में डंपिंग के मामले में अब तक केवल निम्न स्तर के रेडियोधर्मी कचरे को ही डंप किया गया है, लेकिन समुद्र तल पर फैले सैकड़ों-हजारों टन परमाणु कचरे के धीमे क्षय की तरह, समुद्री जीवों के शरीर लिखी गई मानव उद्योग की जहरीली विरासतें याद दिलाती हैं कि गहराई भूलने की जगह नहीं है कि जहां कुछ भी डाल दो और भूल जाओ। यह मान लेना आसान है कि हमारा ग्रह केवल स्थलीय वातावरण द्वारा परिभाषित है, वास्तव में विपरीत सच है। समुद्र में परमाणु कचरे की डंपिंग लापरवाही

और लालच की एक बहुत बड़ी कहानी का सिर्फ एक हिस्सा है। प्लास्टिक और अन्य वस्तुओं के रूप में भी मानव अपशिष्ट गहरे समुद्र में हर जगह है। सबसे अधिक परेशान करने वाली बात समुद्र की गहराई में माइक्रोप्लास्टिक का बढ़ता संचय है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर की एक रिपोर्ट के मुताबिक, हर साल लगभग 300 मिलियन टन प्लास्टिक का निर्माण होता है, इसमें से लगभग 14 मिलियन टन प्लास्टिक कचरे के रूप में हर साल समंदर में फेंक दिया जाता है। समुद्र में परमाणु कचरे की डंपिंग लापरवाही और लालच की एक बहुत बड़ी कहानी का सिर्फ एक हिस्सा है। प्लास्टिक और अन्य वस्तुओं के रूप में भी मानव अपशिष्ट गहरे समुद्र में हर जगह है। खेल बैग, पुतले, समुद्र तट की गेंदें और बच्चों की बोतलें कई हजारों मीटर की गहराई तक समुद्र तल पर फैली हुई हैं। कुछ क्षेत्रों में ऐसी वस्तुओं की संख्या 300 वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है। जब खोजकर्ता विक्टर वेस्कोवो 2019 में मारियाना ट्रेंच के निचले भाग पर पहुंचे, तो उन्हें न केवल एम्फिपोड्स की पहले से अज्ञात प्रजातियों का सामना करना पड़ा, बल्कि उन्हें प्लास्टिक बैग और मीठे रैपर भी मिले। सबसे अधिक परेशान करने वाली बात समुद्र की गहराई में माइक्रोप्लास्टिक का बढ़ता संचय है।

समुद्र की ऊपरी परतों में माइक्रोप्लास्टिक ने खाद्य श्रृंखला पर आक्रमण किया है। जैसे-जैसे कोई शिकार की परतों के माध्यम से ऊपर की ओर बढ़ता है, उच्च और उच्चतर सांद्रता में एकत्रित होता जाता है। व्हेल और पक्षी जैसे जानवर बड़ी मात्रा में माइक्रोप्लास्टिक का उपभोग कर रहे हैं, जिससे कुपोषण हो रहा है और उन जीवों के कई अंगों को नुकसान हो रहा है। विश्व आर्थिक मंच द्वारा उजागर किए गए एक अध्ययन में चेतावनी दी गई है कि समुद्री प्लास्टिक प्रदूषण 2050 तक चौगुना हो सकता है, जबकि माइक्रोप्लास्टिक्स संभावित रूप से 2100 तक पचास गुना बढ़ सकता है। यह समुद्री जैव विविधता के लिए खतरा तो है ही, कुछ प्रजातियों को विलुप्त होने के कगार पर पहुंचा सकता है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:09-04-24

अभिव्यक्ति को बल

संपादकीय

यूट्यूबर्स या यूट्यूब पर विचार व्यक्त करने वालों के लिए यह किसी खुशखबरी से कम नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय ने उनके पक्ष को मजबूत किया है। न्यायालय ने यथोचित फैसला लेते हुए तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम के स्टालिन के खिलाफ कथित अपमानजनक टिप्पणी से जुड़े एक मामले में यूट्यूबर ए दुरई मुरुगन सत्ताई को दी गई जमानत बहाल कर दी है। न्यायमूर्ति अभय एस ओका और न्यायमूर्ति उज्जल भुइयां की पीठ ने मुरुगन की जमानत रद्द करने के आदेश को निरस्त कर दिया है। साथ ही, यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मुरुगन ने स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है। सुनवाई के दौरान सबसे खास टिप्पणी न्यायमूर्ति ओका ने की, अगर चुनाव से पहले हम यूट्यूब पर आरोप लगाने वाले सभी लोगों को सलाखों के पीछे डालना शुरू कर देंगे, तो कल्पना कीजिए कि कितने लोगों को जेल होगी? वाकई आज के समय में सरकार या राजनेताओं के विरुद्ध बोलने या सवाल उठाने वालों की संख्या कम नहीं है और अनेक यूट्यूब चैनल पर लोग सीधे आरोप लगा देते हैं, कुछ लोग तो दोषी होने का फैसला भी सुना देते हैं!

वैसे, क्या लोकतंत्र में आलोचकों का मुंह बंद किया जा सकता है? क्या कोई सरकार यूट्यूब पर प्रतिबंध लगाकर कुख्याति मोल लेना चाहेगी? आज देश में जितने भी स्मार्टफोन हैं, सभी में यूट्यूब एप अनिवार्य रूप से रहता है। शायद ही कोई ऐसा स्मार्टफोन धारक होगा, जो यूट्यूब न देखता होगा। यह बात भी बार-बार सामने आई है कि यूट्यूब ने लोगों को अभिव्यक्ति की आजादी का अवसर ही नहीं दिया है, बल्कि उसका विस्तार भी किया है। वीडियो बनाने और उसे लोगों तक पहुंचाने की इस आजादी के नकारात्मक पहलू खूब हैं, किंतु सकारात्मक पहलुओं की ही ज्यादा चर्चा होनी चाहिए। लोकतंत्र में बहुत हद तक अभिव्यक्ति की आजादी लोगों के विवेक पर ही निर्भर है। इस मामले में भी न्यायालय ने यही माना है कि मुरुगन ने विरोध प्रदर्शन और अपने विचार व्यक्त करके अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है। कोई शक नहीं कि अदालत ने यथोचित उदारता का परिचय दिया है। स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के दौर में लोगों को भी ज्यादा उदार बनने की जरूरत है। किसी वीडियो की शिकायत करते हुए सावधानी बरतना जरूरी है। इस मामले में शिकायतकर्ता द्रमुक का सदस्य है और उसने रावण नामक यूट्यूब चैनल पर याचिकाकर्ता का भाषण सुना, जिसमें मुख्यमंत्री स्टालिन का मजाक उड़ाया गया था। शिकायतकर्ता को यह बुरा लगा और पुलिस ने उसकी शिकायत के आधार पर मामला दर्ज करके अक्तूबर 2021 में मुरुगन को गिरफ्तार कर लिया।

हालांकि, इस मामले का त्रासद पक्ष यह है कि यह विवाद निचले स्तर पर ही सुलझाया जा सकता था, लेकिन यह सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंच गया। न्याय तक पहुंचने में काफी समय लग गया। गौर कीजिए, नवंबर 2021 में मद्रास हाईकोट ने मुरुगन को जमानत दे दी थी, पर बाद में उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने जमानत रद्द कर दी थी। उसके बाद 2022 में सर्वोच्च न्यायालय ने मुरुगन को अंतरिम जमानत दी और तब से वह जमानत पर बाहर हैं। अब जाकर उन्हें राहत की सांस मिलेगी। सूचना प्रौद्योगिकी के नए दौर में यह एक ऐसा आदर्श मामला है, जिससे हम काफी कुछ सीख सकते हैं। आज निंदा में शालीनता व संतुलन का होना जितना जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी है, शिकायत से पहले निंदा पर समझदारी से सोचना।

Date:09-04-24

तमिल राजनीति और एक वीरान टापू

एस श्रीनिवासन, (वरिष्ठ पत्रकार)

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के एक प्रमुख अखबार ने अपने 31 मार्च के संस्करण में बताया कि पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा सन् 1974 में कच्चातिवु नामक द्वीप श्रीलंका को सौंपने का मसला लोकसभा चुनावों में तमिलनाडु में बड़ा मुद्दा बन सकता है। तमिलनाडु के भाजपा अध्यक्ष के अन्नामलाई से मिले दस्तावेज के आधार पर तैयार रिपोर्ट कहती है कि भारत ने श्रीलंका की हठधर्मिता को स्वीकार कर लिया और वर्षों तक दावा जताने के बाद कच्चातिवु श्रीलंका के हवाले कर दिया। इसके बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तरफ से दो ट्वीट किए गए। पहले में कांग्रेस पर हमला बोला गया और कहा गया, नए तथ्यों से पता चलता है कि कांग्रेस ने कितनी बेरहमी से कच्चातिवु श्रीलंका को दे दिया। ट्वीट में आगे लिखा गया है, कांग्रेस पर कभी भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह भारत की एकता और अखंडता को कमजोर करती रही है। दूसरे ट्वीट में द्रमुक सरकार को घेरा गया और कहा गया कि इसने द्रमुक के दोहरे मानदंडों को बेपरदा

किया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि तत्कालीन मुख्यमंत्री एम करुणानिधि को भारत सरकार के इस फैसले की पूरी जानकारी थी।

विदेश मंत्री एस जयशंकर ने भी कहा कि तमिलनाडु के लोगों को तत्कालीन दोनों सरकारों ने गुमराह किया। उन्होंने पत्रकारों को यह मामला समझाने के लिए प्रेस कॉन्फ्रेंस भी की। जाहिर है, राष्ट्रीय समाचारों में यह मुद्दा जल्द ही सुर्खियों में आ गया। हालांकि, तमिलनाडु के समाचार चैनलों ने इस खबर को संतुलित बनाने के लिए राज्य के कांग्रेस व द्रमुक नेताओं की प्रतिक्रियाएं भी दिखाईं। भाजपा नेता इस बात को लेकर भी मुखर थे कि कैसे तमिलनाडु के गरीब मछुआरों के हितों से समझौता किया गया। जाहिर है, इस मुद्दे को हवा देने का मूल कारण तमिलनाडु के मतदाताओं, खासकर तटीय इलाकों में रहने वाले मछुआरों को अपनी ओर आकर्षित करना है।

कच्चातिवु अतीत में तमिलनाडु में एक भावनात्मक मुद्दा रहा है। रामेश्वरम के मछुआरों ने द्वीप के पास मछली पकड़ने संबंधी अधिकार और अपने जाल सुखाने व नावों की मरम्मत की सुविधा की मांग की थी। यह मुद्दा 1980 और 1990 के दशक में सूबाई राजनीति में अक्सर उठता रहा, जिसमें द्रमुक और अन्नाद्रमुक एक-दूसरे पर मछुआरों के अधिकारों को खत्म करने का आरोप लगाते रहे। पूर्व मुख्यमंत्री जयललिता ने केंद्र को पत्र लिखकर कहा भी था कि इस द्वीप को श्रीलंका से वापस ले लिया जाना चाहिए।

मगर बीते एक दशक से अधिक वक्त से यह कोई मुद्दा नहीं रहा था, क्योंकि मछुआरों के पास अब बेहतर संचार सुविधा और उन्नत नावें आ गई हैं। वे अब कच्चातिवु के आसपास नहीं जाते, जहां उनके मछली पकड़ने पर प्रतिबंध है। इसके बजाय वे अब गहरे पानी में चले जाते हैं, यहां तक कि श्रीलंकाई तटों के करीब भी पहुंच जाते हैं और वहां के सुरक्षा बलों की नाराजगी मोल लेते हैं। दुर्भाग्यवश, मछुआरों की गिरफ्तारी, भारतीय नौकाओं की जब्ती और भारतीय मछुआरों पर गोलीबारी की नौबत आ जाती है, जिनसे दोनों पड़ोसी देशों में तनाव भी पैदा होता रहा है।

अजीब बात है, तमिलनाडु में मछुआरों का मुद्दा और श्रीलंकाई तमिलों के कत्लेआम भावनात्मक मुद्दे रहे हैं, लेकिन इनका कभी भी राज्य या राष्ट्रीय चुनावों पर कोई असर नहीं पड़ा। फिर भी, यह मुद्दा अनवरत राजनीतिक विमर्श में बना रहा है। वास्तव में, जो दल सिर्फ श्रीलंकाई मसले या मछुआरों के मुद्दों पर अपना जोर लगाते हैं, वे लोगों में अपनी जगह बनाने में विफल ही साबित हुए हैं।

यही कारण है कि तमिलनाडु का एक बड़ा तबका हैरान है कि भाजपा ने आखिर इस मुद्दे को अभी क्यों उठाया, क्योंकि इसका मकसद कांग्रेस और उसके क्षेत्रीय सहयोगी द्रमुक को घेरने के अलावा दूसरा कारण नहीं दिखता। भाजपा यही बताने का प्रयास कर रही है कि विपक्षी गठबंधन किस तरह से देश के राष्ट्रीय हितों से समझौता कर चुका है। भाजपा की नजर कन्याकुमारी, थूथुकुडी, नागरकोइल व रामनाथपुरम जैसे तटीय क्षेत्रों की लोकसभा सीटों पर है, जहां उसे लगता है, मछुआरों का मुद्दा प्रभावी साबित होगा।

अगर इस मामले पर नजर डालें, तो करीब 1.9 वर्ग किलोमीटर का यह द्वीप भारत और सीलोन के बीच ब्रिटिश कब्जे से मुक्त होने से बहुत पहले विवादित था। चूंकि ब्रिटिश हुकूमत इस मसले का हल नहीं निकाल सकी, इसलिए उसने दोनों पक्षों के मछुआरों को द्वीप पर जाने की अनुमति दे दी। इसीलिए, कच्चातिवु कभी भी भारत का हिस्सा नहीं था। आजादी के बाद जब यह मुद्दा फिर से उठा, तो 1974 में लंबी चर्चा के बाद भारत और श्रीलंका के बीच अंतरराष्ट्रीय समुद्री सीमा खींच दी गई और भारत ने इस द्वीप पर अपना दावा छोड़ दिया। इसमें दोनों पक्षों द्वारा वहां मछली

पकड़ने का समझौता हुआ। साल 1976 में दोनों देशों के बीच विशेष आर्थिक क्षेत्र बना, जिसकी वजह से भारत ने मछली पकड़ने का अपना अधिकार वापस ले लिया। वास्तव में, भारत ने कन्याकुमारी की ओर से 'वाड्ज बैंक' के लिए सौदेबाजी की। चूंकि श्रीलंका को कच्चातिवु मिल गया, इसलिए उसने इस पर कोई दावा नहीं किया। नतीजतन, भारत को समुद्र में अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा मिला, जो विविधता के मामले में समृद्ध है और यहां मछली भी खूब है। कुछ पर्यवेक्षक तो इसके लिए इंदिरा गांधी की सराहना करते हैं, क्योंकि यह इलाका तेल व खनिज संसाधनों से भी समृद्ध है।

चूंकि कच्चातिवु द्रमुक और अन्नाद्रमुक, दोनों के लिए विवादास्पद है, इसलिए वे दोनों दल एक-दूसरे पर आरोप उछालकर और केंद्र को भी घेरे में लेकर तटीय इलाकों के मतदाताओं को लुभाना चाहते हैं। अभी यही सब हो रहा है। 'वाड्ज बैंक' कोई द्वीप नहीं है, बल्कि इको सिस्टम के लिए एक सामान्य शब्द है। दुनिया में ऐसे 20 वाड्ज बैंक हैं। भारत सरकार ने हाल ही में यहां तेल की खोज की प्रक्रिया शुरू करने का प्रयास किया था, लेकिन मछुआरों के विरोध के कारण इसे स्थगित कर दिया गया, क्योंकि उनको डर है कि इससे यहां के पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंच सकता है।

बेशक, इस पूरे मसले में कोई कांग्रेस पर शक कर सकता है या इंदिरा गांधी को विवादों में घसीट सकता है, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि वह इंदिरा गांधी ही थीं, जिन्होंने बांग्लादेश को आजाद कराया और सिक्किम का विलय भारत में कराया था।